अजनबी श्रम का फ्राईडीय विश्लेषण

1844 में लिखे मार्कस के अलगाव वादी श्रम या अजनबी श्रम के बाद में हमें फिर से सोचना चाहिए। तब मार्कस के सामने तब का समाज पूंजी और पूंजीवाद था। मार्कसवादी चिन्तकों ने फोईडीय मनोविश्लेषण को एक पूंजीवादी व्यक्तिवादी मान कर उस पर सोचा ही नहीं।

इंसानों के न्यूरोटिक होने के लक्षण रोज की जिन्दगी तथा सपनों की तर्कहीनताओं के भी सामाजिक अर्थ है। सचेतन व अचेतन व्यवहार के बिच के संघर्ष पर सोचने की जरूरत है। इन्सानों के सभी व्यवहारों की जड़ यह संघर्ष है और वह उद्देश्यहीन नहीं होता। माक्सवाद ने निजी सम्पत्ति आदि के खात्में की बात पर फ्रायड का मानना था कि निजी सम्पत्ति के खात्में के जरिए हम इन्सानों को उस आक्रमकता से वंचित करते है जो उसके एकसन के हथियार है। आदिकाल के समाजों में भी यह विध्यमान थी। (निजी सम्पत्ति) भौतिक वस्तुओं पर किसी स्वामित्व को खत्म कर देते है तो भी यह तत्व यौनतामूलक सम्बन्धों का परमाधिकार है जिसकी वजह से समान लोग भी एक दूसरे को नापसन्द कर सकते है। हर्बट मारकुस ने अपने अध्ययन (1970) में जरूरत–श्रम–संतोष वाले उपभोक्तावादी तत्वों के नजरिये से मनुष्य की प्रवृत्ति का अध्ययन किया और कहा कि मनोविज्ञान और राजनीतिक अर्थशास्त्र अलग–अलग नहीं रहते।

जरूरत–श्रम–संतोष के बीच मनोसामाजिक संघर्ष चलता है। हर्बट मारकुस ने चार बातें बताई–

1. यौनता का दमनात्मक संशोधन आदमी को एक ''निरानंद'' परंतु सामाजिक रूप से उपयोगी श्रम के लिए आजाद करता है।
2. यदि यह श्रम जीवन का पर्याय बना दिया गया है तो आदमी को संतोष की जगह संतोष की दिशा में लगा देता है।
3. इस क्रम में सभ्यता स्वयं को हर बार विस्तारित ढंग से पुनरूत्पादित करती है।
4. श्रम की बढ़ती उत्पादकता आनंद की संभावनाओं को बढ़ाती है और इस तरह आंनन्द और श्रम एवं समय के बीच सामाजिक रूप से संबन्धों में उलटफेर संभव है।

मारकुस के बाद हेबरमास ने अपने अध्यनों द्वारा बताया कि मनुष्य की अवतेचन की गतियां मुख्यतः द्वंदात्मक होती है। कही वे 'विकृत सम्प्रेषण' में प्रकट होती है। पूंजीवाद में 'आत्म' (Self) 'समस्यात्मक' है। समाज का हर व्यक्ति अपनी पहचान से बेगाना है। 'आत्म' की परम्परागत पूर्णता सम्भव नहीं रही। समाज का हर व्यक्ति परिवार, घर, काम, खाली वक्त के उपयोग, राजनीति आदि में अपने आप को पहचानने में असमर्थ है। सब अनुभव बुरी तरह विभक्त है। वे यथार्थ के बोध से और भी दूर जा पड़े है। रचनात्मक व्यवहार से और भी पराय है। उपरोक्त बातों को हमें बुनियादी शाला के श्रम के साथ भी जोडकर सोचना चाहिए। गांधीजी के समाज उपयोगी श्रम के आवधारणा को हर्बस मारकुस के चार सिद्धांतों में रखकर देखने की कोशिश करे तो? न्युलेफ्ट के निष्कर्षों को नये पूंजीवाद में तकनिकी संचालित पूंजीवाद को रखकर देखे तो (परायापन श्रम का) नोकरशाही पूंजीवाद के दौर में आया परायापन अब और जटिल होकर आया है। मार्क्स ने 1844 में जिस परायपन या अजनबी श्रम की बात श्रम व पूंजी को बताते हुए कही थी वह आज अधिक संगत लगती है। श्रम के अजनबीपन के साथ लडने के लिए नई परिस्थितियों में एक अन्तमानवीय वातावरण बनाए रखना होगा। जो सामाजिक उद्देश्य और

व्यक्तिगत जरूरतों के बीच की जटिलताओं को देख सके। आत्म (Self) और श्रम के बीच के परायपन के अनन्त खाइयों को पाटने के तरिकों में से एक यह हो सकता है कि आत्म और उसकी जरूरतों की नीजी दूनिया कामना और स्वप्नों के तनाव पर नजर रखी जाये तथा भावनात्मक मानवसंबन्धि नये प्रकार के तौर तरिके तलाशे जाये। यह एक फ्री–स्पेस निर्मित करेगा जिससे पराये आत्म का मनोविकास हो सके। (यहां बुनियादी शाला में श्रम की गांधीवादी अवधारणा को फिर से सोचे)

उपरोक्त बात से यह बोध पैदा हो सकता है कि जिन अनुभव को बालक 'परमनिजता' समझकर बड़ा होता है और मानता है कि उनके मनोविकास के निर्माण में सामाजिक संरचना की कोई भूमिका नहीं तब बालक वह भी जाने कि 'परमनिजता' सामाजिक ही है।

माक्स 'अजनबी श्रम' को (आर्थिक दार्शनिक संबंध में) वास्तविक आर्थिक तथ्य से जोडकर देखते है, राजनीतिक अर्थशास्त्र (पूंजीवादी अर्थशास्त्र श्रम के इस अजनबी पन के होने को छिपाता है। श्रमिक बौधिक मुक्ति सहित) और उसके उत्पाद के बीच कोई परायापन नहीं देखते श्रमिक का अजनबीपन अपने ही श्रम के उत्पाद के साथ उसकी संबंधहिनता में नजर आता है। जो वह पैदा करता है, वही उत्पाद उससे पराया होता है। ऐसे में श्रमिक अपने को अपने काम से बैगाना समझता है। यह अजनबीपन अगले चरण अपने काम से भी बैगाना हो जाता है। वस्तु से अजनबी बना श्रमिक अपने श्रम से भी अजनबी बनता चला जाता है। अपने तन, मन सब से अजनबी, इस तरह मानव अपने श्रम के उत्पाद, कामधाम, आपने मानविय होने के अनुभव से भी पराया हो जाता हैं। माक्स के अनुसार नीजी पूंजी अजनबी श्रम की प्रक्रिया और अजनबी मनुष्य का निर्माण करने वाली होती है। क्रांति में नीजी पूंजी का स्वामित्व खत्म कर दिया जाये तो यह परायापन भी खत्म हो जायेगा। यह बात का भरपूर उपयोग हुआ। मगर पूंजी और उसके परायापन की जबरजस्त ताकत पूंजी के नीजी सामित्व की और लोटा कर ले जाती रही।

यह 'बुर्जुआ इपाक' है। सत्ता बदलने मात्र से युग नहीं बदल सकते है। पूंजी के परायापन की रचनात्मक भूमिका को तुरन्त खत्म करना मुश्किल तो है। एक सवाल यह है कि तब यह समय किसका है। कम से कम यह समय अपना नहीं। अजनबी विराट पूंजी का है जो श्रम ने, उसके शोषण ने बनाई है। शायद इसी में फ्री–स्पेस खोजना होगा।